

पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य

बनाम

मनमल भूटोरिया और अन्य

3 मई, 1977

[पी. के. गोस्वामी और एस. मुर्तजा फजल अली, जे.जे.]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947-धारा 5 (2)-एक सेवानिवृत्त सेना अधिकारी और एक बाहरी व्यक्ति पर धारा 5 (2) के तहत मुकदमे की संभावना- अभियोजन, यदि वैध हो- यदि पश्चिम बंगाल आपराधिक कानून संशोधन (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1949 के तहत विशेष न्यायालय मामले की सुनवाई कर सकता है।

मई 1967 में प्रत्यर्थी और भारतीय सेना के एक मेजर के खिलाफ मामला दर्ज किया गया था, जो 1966 में सेवानिवृत्त हुए थे, जिसमें आरोप लगाया गया था कि मेजर ने प्रत्यर्थी के साथ, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (2) के तहत एक लोक सेवक के रूप में अपने पद का बेईमानी से दुरुपयोग करते हुए एक लोक सेवक द्वारा आपराधिक कदाचार की साजिश के अपराध किए थे। जब मामला, जिसे पश्चिम बंगाल आपराधिक कानून संशोधन (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1949 की धारा 4 (2) के तहत चौथे अतिरिक्त विशेष न्यायालय को आवंटित किया गया था, सुनवाई के लिए आया, तो प्रतिवादी ने मामले की सुनवाई करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र को चुनौती देते हुए एक रिट याचिका दायर की। विशेष न्यायालय को आवंटन के आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर अवैध ठहराया गया था कि विशेष न्यायालय को उस व्यक्ति पर मुकदमा चलाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था जो उस तारीख को लोक सेवक नहीं रह गया था जब न्यायालय को अपराध का संज्ञान लेने की

आवश्यकता थी क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता था कि कुछ मामलों में वह एक लोक सेवक था और कुछ अन्य मामलों में वह नहीं था।

प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क दिया गया था कि (1) चूंकि मामले में संविधान की अनुच्छेद 14 की व्याख्या शामिल है, संविधान की अनुच्छेद 144 (ए) को ध्यान में रखते हुए इसे एक बड़ी पीठ को भेजा जाना चाहिए। (2) आई. पी. सी. की धारा 21 में निहित लोक सेवक की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, एक लोक सेवक वह है जो पद पर है और वह नहीं है जो पद पर रहना बंद कर चुका है; (3) बंगाल अधिनियम की धारा 10 को ध्यान में रखते हुए विशेष न्यायालय को अपराध का मुकदमा चलाने की कोई अधिकारिता नहीं थी; और (4) प्रतिवादी, जो लोक सेवक नहीं है, बंगाल अधिनियम और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों से बाहर है।

अपील की अनुमति देते हुए अभिनिर्धारित किया :

(1) इस तर्क में कोई सार नहीं है कि अपील को एक बड़ी पीठ को भेजा जाना चाहिए। एस. ए. वेंकटरमण बनाम राज्य [1958] एस. सी. आर. 1037 में निर्णय के आधार पर अनुच्छेद 14 की प्रयोज्यता का अनुरोध पूरी तरह से गलत धारणा है। [764 जी]

(क) वेंकटरमण के मामले में निर्णय को देखते हुए एक श्रेणी में लोक सेवकों को कार्यालय में और लोक सेवकों को शामिल करने के लिए कोई वारंट नहीं है जो ऐसा करना बंद कर चुके हैं। लोक सेवकों के ये दोनों वर्ग समान रूप से स्थित नहीं हैं जैसा कि सी. आर. बंसी बनाम महाराष्ट्र राज्य [1971] 3 एस. सी. आर. 236 में स्पष्ट रूप से बताया गया है। [764 ई]

(बी) यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि वेंकटरमण के मामले में निर्णय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। वह निर्णय केवल यह कहता है कि अधिनियम की धारा 6 किसी लोक सेवक पर लागू नहीं होता है यदि न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने के समय वह ऐसा करना बंद कर देता है। चूँकि कोई विशेष धारा लोक सेवक के पद से हटने के बाद उस पर लागू नहीं होती है, इसलिए अधिनियम के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने का प्रश्न नहीं उठेगा। इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से एक लोक सेवक को, जो पद पर नहीं रह गया है, एक अलग श्रेणी में रखा है और वर्गीकरण ने इन सभी वर्षों में बिना किसी आपत्ति के इस क्षेत्र को संभाला है। [764 एफ-जी]

(ग) बंगाल अधिनियम की धारा 4 (1) का परंतुक अनुच्छेद 14 को आकर्षित नहीं कर सकता है। इस परंतुक द्वारा विशेष न्यायालय, जब किसी अनुसूचित अपराध की सुनवाई करता है, तो यह पाता है कि कोई अन्य अपराध भी किया गया है, और एक मुकदमे में उसी का मुकदमा सीआरपीसी के तहत अनुमत है, वह इस तरह के आरोप का परीक्षण कर सकता है। बंगाल अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत एक अनुसूचित अपराध जिसमें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत एक अपराध शामिल है और उस अपराध को करने की साजिश भी शामिल है, केवल विशेष न्यायालयों द्वारा ही विचारणीय होगी। कोई अन्य अदालत उन अपराधों की सुनवाई नहीं कर सकती है। [764 एच, 765 बी-सी]

पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनवर अली सरकार [1952] एस. सी. आर. 284  
अप्रयोज्य ठहराए गए।

(2) आई. पी. सी. की धारा 21 वर्तमान विवाद को निर्धारित करने में सही परीक्षण का जोखिम नहीं उठाती है। अधिनियम के साथ-साथ बंगाल अधिनियम के

प्रावधानों को आकर्षित करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण तिथि यह है कि क्या अपराध आई. पी. सी. की धारा 21 की परिभाषा के भीतर किसी लोक सेवक द्वारा किया गया था। अपराध निर्धारित करने की तारीख अपराध करने की तारीख होती है जब आरोपित व्यक्ति को लोक सेवक होना चाहिए। धारा 6 अपराध के संज्ञान और अपराध के कथित अपराध के बीच स्पष्ट अंतर करती है। मंजूरी की तारीख अनिवार्य रूप से अपराध की तारीख के बाद की होती है और कभी-कभी उस तारीख से बहुत दूर होती है। किसी लोक सेवक की सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र, बर्खास्तगी या निष्कासन से उस अपराध का सफाया नहीं होगा जो उसने सेवा में रहते हुए किया था। धारा 6 (1) के तहत, जैसा कि धारा 190 (1) सीआरपीसी के मामले में है, न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान लेता है न कि अपराधी का। [765 ई-जी]

रघुबंस दुबे बनाम बिहार राज्य (1967) 2 एस. सी. आर. 423 का उल्लेख किया गया।

(3) बंगाल अधिनियम की धारा 10 जो यह प्रावधान करती है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधान बंगाल अधिनियम के तहत मुकदमों पर लागू होंगे, स्पष्ट रूप से आकर्षित हैं। इस न्यायालय द्वारा धारा 6 की व्याख्या ऐसे लोक सेवक पर लागू नहीं होने के लिए की गई है जिसने पद पर रहना बंद कर दिया है। यह बंगाल अधिनियम की धारा 10 की व्याख्या को प्रभावित नहीं करेगा। [766 ए-बी]

(4) इस निवेदन में कोई योग्यता नहीं है कि विशेष न्यायालय प्रतिवादी के खिलाफ आई. पी. सी. की धारा 120 बी के साथ पठित अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत अपराध का मुकदमा नहीं चला सकता है।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत भी, एक बाहरी व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 5 (3) के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है जब कोई व्यक्ति आदतन आई.

पी. सी. की धारा 165ए के तहत दंडनीय अपराध करता है। धारा 165ए जो यह प्रावधान करती है कि "जो कोई भी धारा 161 या धारा 165 के तहत दंडनीय अपराध को बढ़ावा देता है, चाहे वह अपराध उकसाने के परिणामस्वरूप किया गया हो या नहीं, उसे दंडित किया जाएगा" स्पष्ट रूप से एक बाहरी व्यक्ति के लिए लागू होता है जो एक लोक सेवक को उकसा सकता है। बंगाल अधिनियम की अनुसूची की मद 8 में मद 1,2,3 और 7 में निर्दिष्ट किसी भी अपराध को करने या करने का कोई प्रयास करने या किसी को उकसाने का उल्लेख है। यह स्पष्ट है कि अनुसूची की मद 8 के तहत एक बाहरी व्यक्ति पर एक लोक सेवक के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है यदि पूर्व भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 के तहत अपराध करने के लिए उकसाता है या साजिश का अपराध करता है जिसका उल्लेख अनुसूची की मद 7 में किया गया है।  
[766 सी-ई]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1973 की सिविल अपील सं. 1134

(1969 के मूल आदेश संख्या 253 से अपील में कलकत्ता उच्च न्यायालय के दिनांकित 14-7-1972 के निर्णय और आदेश से)

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1974 की आपराधिक अपील सं. 319

(1973 के आपराधिक संशोधन संख्या 264 में दिल्ली उच्च न्यायालय के दिनांकित 4-10-1973 के निर्णय और आदेश से विशेष अनुमति याचिका द्वारा अपील)

1976 की आपराधिक अपील संख्या 358

(1975 के आपराधिक पी. सी. सं. 16 में विशेष न्यायाधीश दिल्ली के 30.7.1976 के निर्णय और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील)

सी. ए. सं. 1134/73 में अपीलार्थी के लिए वी. पी. रमन, डी. एन. मुखर्जी और जी. एस. चटर्जी।

निरेन डे और एन. सी. तालुकदार, बी. एम. बागरिया, दिलीप सिन्हा और डी. पी. मुखर्जी, सीए 1134/73 में प्रतिवादी संख्या 1 के लिए।

आर. एन. सचथे, सीए नंबर 1134/73 में प्रतिवादी नंबर 3 के लिए।

प्रवीण कुमार, क्रि. ए. संख्या 319/74 में अपीलार्थी के लिए।

आर. एन. सचथे, सीआरएल ए. नं. 319/74 में प्रतिवादी संख्या 1 के लिए।

1976 के सी. आर. एल. ए. सं. 358 में अपीलार्थी के लिए आर. एच. ढेबर और बी. वी. देसाई।

सी. आर. एल. ए. संख्या 385/76 में उत्तरदाताओं के लिए वी. पी. रमन और आर. एन. सचथे।।

न्यायालय का निर्णय जे. गोस्वामी द्वारा दिया गया।

इन अपीलों में विचार के लिए कानून का एक सामान्य प्रश्न उत्पन्न होता है। इसलिए हम इस मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए 1973 की दीवानी अपील संख्या 1134 में उपस्थित तथ्यों का उल्लेख करेंगे और हमारा निर्णय इन अपीलों को नियंत्रित करेगा। हमें सूचित किया जाता है कि 1974 की आपराधिक अपील संख्या 319 में एकमात्र अपीलार्थी की मृत्यु हो गई। अतः उक्त अपील समाप्त हो जाती है और खारिज कर दी जाती है। 1973 की दीवानी अपील संख्या 1134 कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड पीठ के फैसले के खिलाफ निर्देशित की गई है, जिसमें एकल न्यायाधीश के पहले

के फैसले को उलट दिया गया था। जहाँ तक सामग्री का संबंध है, तथ्यों को संक्षेप में बताया जा सकता है:

27 मई, 1967 को या उसके आसपास, पुलिस उपाधीक्षक, केंद्रीय जांच ब्यूरो, उप-मंडल, कालकुटा द्वारा आर. सी. भट्टाचार्जी, जो भारतीय सेना के पूर्व मेजर थे और मनमल भुटोरिया (इसके बाद, प्रतिवादी), जो एक व्यवसायी थे, के खिलाफ मामला दर्ज किया गया था। यह आरोप लगाया गया था कि आर. सी. भट्टाचार्जी ने प्रत्यर्थी के साथ मिलीभगत और साजिश में कथित प्रत्यर्थी के एक काल्पनिक नामित व्यक्ति से कुछ भंडारों की आपूर्ति के लिए सैन्य अधिकारियों को अन्य निविदाकारों द्वारा उद्धृत मूल्य से अधिक कीमत पर कुछ निविदाएं स्वीकार की थीं और इस तरह सैन्य प्राधिकरण और भारत सरकार को काफी नुकसान हुआ था। यह भी आरोप लगाया गया कि उक्त भट्टाचार्जी ने प्रतिवादी के साथ मिलकर अनुचित आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए एक लोक सेवक के रूप में अपने पद का बेईमानी से दुरुपयोग करते हुए एक लोक सेवक द्वारा आपराधिक कदाचार की साजिश रचने का अपराध किया था, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (2) के तहत अपराध के बराबर है।

अभियुक्त भट्टाचार्जी को किसी भी प्रकार की सैन्य सेवा के लिए स्थायी रूप से अयोग्य बताते हुए 14 फरवरी, 1966 से सैन्य सेवा से अमान्य कर दिया गया था। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (इसके बाद, संक्षेप में अधिनियम) के तहत एक मामले की सुनवाई केवल पश्चिम बंगाल आपराधिक कानून संशोधन (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1949 (1949 का पश्चिम बंगाल अधिनियम 21) (संक्षेप में बंगाल अधिनियम) के प्रावधानों के तहत गठित एक विशेष अदालत द्वारा की जा सकती है। 15 जून, 1967 को कलकत्ता राजपत्र में एक अधिसूचना द्वारा, राज्य सरकार ने बंगाल अधिनियम की धारा 4 की उप-धारा (2) के तहत कलकत्ता में चौथे अतिरिक्त विशेष

न्यायालय को उक्त मामला आवंटित किया। जब विशेष न्यायालय ने 23,24 और 25 नवंबर, 1967 को मुकदमे के लिए मामला तय किया, तो प्रतिवादी ने 7 नवंबर, 1967 को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कलकत्ता उच्च न्यायालय का रुख किया, जिसमें तर्क दिया गया कि -

(1) जिस समय मामला विशेष न्यायालय को वितरित किया गया था, उस समय सह-अभियुक्त, पूर्व मेजर भट्टाचार्य, लोक सेवक नहीं रह गए थे और इस प्रकार बंगाल अधिनियम का कोई आवेदन नहीं था और उक्त न्यायालय को मामले पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था;

(2) एक लोक अधिकारी के मामले के आवंटन की तारीख पर ऐसा अधिकारी नहीं रहने के कारण राज्य सरकार द्वारा आवंटन का आदेश अधिकार क्षेत्र से बाहर और शून्य था; और

(3) विशेष न्यायालय को उन मामलों की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था जिनमें दो निजी व्यक्ति शामिल थे और विशेष न्यायालय को मामले का आवंटन इस प्रकार अवैध था।

मंजूरी के अभाव के संबंध में एक मुद्दा भी उठाया गया था, लेकिन एस. ए. वैकटरमन बनाम राज्य मामले में इस न्यायालय के फैसले को देखते हुए हमारे सामने नहीं उठाया गया था।

उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट आवेदन को खारिज कर दिया लेकिन खंड पीठ ने दो सहमति वाले फैसलों द्वारा एकल न्यायाधीश के उक्त फैसले और आदेश को खारिज कर दिया। इस तरह यह मामला संविधान के अनुच्छेद 133 (1) (सी) के तहत प्रमाण पत्र पर हमारे सामने आया है।



पी. बी. मुखर्जी, जे. ने अभिनिर्धारित किया-

"एकमात्र समाधान यह अभिनिर्धारित करना है कि ये दो अधिनियम, अर्थात् विशेष न्यायालय अधिनियम और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, एक लोक सेवक पर लागू नहीं होते हैं, जो अदालत द्वारा संज्ञान लेने की तारीख को लोक सेवक नहीं रह गया था। यह समाधान और भी उचित प्रतीत होता है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 से अलग प्रतीत होता है।"

विद्वान न्यायाधीश ने आगे कहा-

"इसलिए एक व्यक्ति जो पद पर रहना बंद कर चुका है, यानी, जो लोक सेवक बनना बंद कर चुका है, वह 'लोक सेवक' अभिव्यक्ति के दायरे में नहीं आता है और इसके परिणामस्वरूप वह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम द्वारा शासित नहीं है और इस प्रकार, उक्त अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत अपराध नहीं कर सकता है।"

विद्वान न्यायाधीश ने फिर कहा-

"ऐसा प्रतीत होता है कि हालांकि मेजर भट्टाचार्जी का लोक सेवक होना समाप्त हो गया था, लेकिन राज्य सरकार ने वर्तमान मामले को विशेष न्यायालय में वितरित करके लोक सेवक के पद से जुड़े लाभों से इनकार करके समान सुरक्षा खंड के सिद्धांत का उल्लंघन किया, लेकिन उस पर लोक सेवक के पद से जुड़े नुकसान और/या अक्षमताओं को थोप दिया। इसलिए यह अधिनियम भेदभावपूर्ण नहीं है, लेकिन राज्य सरकार के विशेष न्यायालय को इस

मामले की कार्रवाई, आवंटन और वितरण भेदभावपूर्ण है। इसलिए इसे निरस्त किया जाना चाहिए और वितरण के आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए।"

विद्वान न्यायाधीश ने यह भी कहा-

"लेकिन एक लोक सेवक जो लोक सेवक नहीं रह गया है, उस पर न तो किसी अनुसूचित अपराध के संबंध में मुकदमा चलाया जा सकता है और न ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत किसी अपराध के संबंध में और इस तरह, ऐसे व्यक्ति का मुकदमा उन दो कानूनों के प्रावधानों के अनुसार नहीं हो सकता है।"

जहाँ तक अपीलार्थी मनमल भुटोरिया का संबंध है, वह कभी भी 'लोक सेवक' नहीं होने के कारण भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम और पश्चिम बंगाल आपराधिक कानून संशोधन (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1949 के तहत विशेष न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है और दोषी माने जाने की सभी बाधाओं का सामना करता है।

बी. सी. मित्रा, जे. ने अपने सहमति वाले निर्णय में निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"दंड संहिता की धारा 21 के तहत विभिन्न खंडों पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर, मुझे कोई संदेह नहीं है कि एक व्यक्ति जो पहले एक लोक सेवक था, लेकिन जो ऐसा होना बंद कर चुका है, वह उस धारा के दायरे में नहीं आता है।"

धारा 5 (1) और धारा 5 (2) दोनों ही केवल लोक सेवकों से संबंधित हैं। इस अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत एक व्यक्ति जो पहले एक लोक

सेवक था, लेकिन प्रासंगिक समय पर लोक सेवक नहीं रह गया है, उस पर रोकथाम अधिनियम की धारा 5 (1) (डी) या धारा 5 (2) के तहत अपराध का आरोप लगाया जा सकता है।

इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, हम तुरंत यह निर्धारित कर सकते हैं कि इस न्यायालय ने वेंकटरमण के मामले (ऊपर) में क्या निर्णय दिया है क्योंकि उसमें जो निर्णय लिया गया था, उसने खंड पीठ के निर्णय को काफी हद तक प्रभावित किया है। उस निर्णय में रिपोर्ट के पृष्ठ 1044 पर इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में टिप्पणी की:-

"अधिनियम के ये प्रावधान (अर्थात् 1947 का अधिनियम 2) इंगित करते हैं कि विधायिका का इरादा एक लोक सेवक की ओर से अब तक के भ्रष्टाचार से अधिक गंभीरता से व्यवहार करना था और इसे किसी भी तरह से माफ नहीं करना था। यदि धारा 6 को अधिनियम में स्थान नहीं मिला था तो यह स्पष्ट है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 161,164 या धारा 165 के तहत या किसी लोक सेवक द्वारा किए गए अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत किसी अपराध का संज्ञान अदालत द्वारा लिया जा सकता था, भले ही वह लोक सेवक न रहा हो। केवल यह तथ्य कि अपराध करने के बाद उनका लोक सेवक बनना बंद हो गया था, उन्हें उनके अपराध से मुक्त नहीं करेगा। धारा 6 निश्चित रूप से पूर्व मंजूरी के बिना उसके अपराध का संज्ञान लेने पर रोक लगाती है, जबकि वह अभी भी एक लोक सेवक है, लेकिन क्या वह प्रतिबंध उसके लोक सेवक नहीं रहने के बाद भी जारी रहता है?"

पृष्ठ 1048/1049 पर फिर से इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में टिप्पणी की:-

"हमारी राय में, अधिनियम की धारा 6 में उपयोग किए गए शब्दों के सामान्य अर्थ को प्रभावी बनाने के लिए, यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि जिस समय एक अदालत को संज्ञान लेने के लिए कहा जाता है, उस समय न केवल एक लोक सेवक द्वारा अपराध किया गया होना चाहिए, बल्कि अभियुक्त व्यक्ति अभी भी एक लोक सेवक है जिसे धारा 6 के प्रावधान लागू होने से पहले एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपने पद से हटाया जा सकता है। वर्तमान अपीलों में, प्रशंसनीय रूप से, अपीलार्थी उस समय लोक सेवक नहीं रह गए थे जब अदालत ने लोक सेवकों के रूप में उनके द्वारा किए गए कथित अपराधों का संज्ञान लिया था। तदनुसार, अधिनियम की धारा 6 के प्रावधान लागू नहीं हुए और उनके खिलाफ अभियोजन एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा पूर्व मंजूरी के अभाव से दूषित नहीं हुआ।"

न्यायालय द्वारा सी. आर. बंसी बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में भी इसी तरह के दृष्टिकोण की पुष्टि की गई थी। इस न्यायालय ने उसमें इस प्रकार निर्णय दिया:-

"धारा 6 और इसी तरह की धाराओं में अंतर्निहित नीति यह है कि लोक सेवकों का अनावश्यक उत्पीड़न नहीं होना चाहिए। लेकिन अगर कोई व्यक्ति लोक सेवक बनना बंद कर देता है तो उत्पीड़न का सवाल ही नहीं उठता। यह तथ्य कि एक अपील लंबित है, उसे लोक सेवक नहीं बनाता है। जब बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया तो

अपीलार्थी का लोक सेवक होना बंद हो गया। विद्वान वकील के तर्क में कोई बल नहीं है और अधिनियम की धारा 6 के तहत मंजूरी की कमी के कारण मुकदमे को खराब नहीं माना जा सकता है।"

इस स्थिति को स्वीकार करते हुए कि अधिनियम की धारा 6 के तहत मंजूरी आवश्यक नहीं है यदि लोक सेवक अपराध का संज्ञान लेने की तारीख को लोक सेवक नहीं रह जाता है, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि लोक सेवकों के एक वर्ग के बीच भेदभाव होगा और दूसरा इसी तरह स्थित होगा जब कार्यालय में रहने वाले लोगों को अभियोजन की मंजूरी की आवश्यकता के कारण उत्पीड़न से बचाया जाएगा, जबकि लोक सेवकों के कार्यालय में रहने के बाद उन पर मुकदमा चलाया जाएगा और मंजूरी की आवश्यकता के अभाव में परेशान किया जाएगा। इस मामले को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय ने कहा है कि विशेष न्यायालय के पास ऐसे लोक सेवक पर मुकदमा चलाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है जो उस तारीख को लोक सेवक नहीं रह गया है जब न्यायालय को अपराध का संज्ञान लेने की आवश्यकता थी, क्योंकि उच्च न्यायालय के अनुसार, "यह नहीं कहा जा सकता है कि कुछ मामलों में वह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत अपराधों के लिए लोक सेवक है और कुछ अन्य मामलों में वह लोक सेवक नहीं है।" यह विचार रखते हुए पी. बी. मुखर्जी, जे. ने कहा कि "यह समाधान और भी अधिक उचित प्रतीत होता है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 से अलग प्रतीत होता है।" हालाँकि, उच्च न्यायालय ने अधिनियम या अधिनियम के किसी भी प्रावधान को असंवैधानिक नहीं माना। इसने केवल विशेष न्यायालय को मामले के आवंटन के आदेश को अवैध माना है क्योंकि एक लोक सेवक का मामला, जो लोक सेवक नहीं रह गया है, विशेष न्यायालय को आवंटित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उच्च न्यायालय के अनुसार, अन्यथा ठहराना संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा।

यह इस तरह के निष्कर्ष की पृष्ठभूमि में है कि प्रतिवादी के वकील श्री निरेन डे प्रस्तुत करते हैं कि इस अपील में संविधान के अनुच्छेद 14 के आधार पर बंगाल अधिनियम के प्रावधानों, विशेष रूप से उस अधिनियम की धारा 4 (1) के परंतुक की संवैधानिक वैधता के बारे में एक प्रश्न का निर्धारण शामिल है। उन्होंने आगे कहा कि एक व्यक्ति जो लोक सेवक नहीं रह गया है, उसके साथ उस व्यक्ति से अलग व्यवहार नहीं किया जा सकता है जो बंगाल अधिनियम के उद्देश्य से कार्यालय में लोक सेवक है। इसलिए, वह प्रस्तुत करते हैं कि 42वें संशोधन द्वारा जोड़े गए अनुच्छेद 144 (ए) को देखते हुए, इस अपील की सुनवाई इस न्यायालय के कम से कम सात न्यायाधीशों द्वारा की जानी चाहिए और इसलिए हमें इसे एक बड़ी पीठ को संदर्भित करना चाहिए। इस निवेदन का समर्थन श्री डेबर ने किया है जो 1976 की आपराधिक अपील संख्या 358 में एक समान मामले में पेश हो रहे हैं और उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 14 के आधार पर अतिरिक्त आधारों का आग्रह करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया है।

उच्च न्यायालय के फैसले के साथ-साथ इस मुद्दे पर वकील द्वारा की गई प्रस्तुति दोनों में कुछ गलत धारणा है। वेंकटरमण के मामले (उपरोक्त) में निर्णय को ध्यान में रखते हुए एक श्रेणी में लोक सेवकों को कार्यालय में शामिल करने और लोक सेवकों को शामिल करने के लिए कोई वारंट नहीं है। लोक सेवकों के ये दोनों वर्ग समान रूप से स्थित नहीं हैं जैसा कि बंसी के मामले (उपरोक्त) में स्पष्ट रूप से बताया गया है। इसलिए वेंकटरमण के मामले (उपरोक्त) में फैसले के आधार पर अनुच्छेद 14 के लागू होने की याचिका पूरी तरह से गलत है। यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि वेंकटरमण के मामले (उपरोक्त) में निर्णय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। वह निर्णय केवल यह कहता है कि अधिनियम की धारा 6 एक लोक सेवक पर लागू नहीं होती है यदि अदालत द्वारा संज्ञान लेने के समय वह ऐसा करना बंद कर देता है। चूंकि किसी लोक सेवक के पद से हटने के बाद उस पर कोई विशेष धारा लागू

नहीं होती है, इसलिए इस अधिनियम के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने का सवाल ही नहीं उठेगा। इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से एक लोक सेवक को, जो पद पर नहीं रह गया है, एक अलग श्रेणी में रखा है और इस वर्गीकरण ने इन सभी वर्षों में बिना किसी आपत्ति के इस क्षेत्र को संभाला है। इसलिए, इस तर्क में कोई सार नहीं है कि इस अपील को एक बड़ी पीठ को भेजा जाना चाहिए।

बंगाल अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत, अनुसूचित अपराध जिनमें अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत अपराध शामिल है और उस अपराध को करने की साजिश भी शामिल है, केवल विशेष न्यायालयों द्वारा ही विचारणीय होगी। इसलिए कोई अन्य अदालत इन अपराधों की सुनवाई नहीं कर सकती है। बंगाल अधिनियम के प्रावधान स्पष्ट रूप से पश्चिम बंगाल विशेष न्यायालय अधिनियम से अलग हैं जो पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनवर अली सरकार में विषय वस्तु थे। बंगाल अधिनियम की धारा 4 (1) का प्रावधान निम्नलिखित शब्दों में है:

"बशर्ते कि किसी मामले की सुनवाई करते समय, एक विशेष न्यायालय अनुसूची में निर्दिष्ट अपराध के अलावा किसी अन्य अपराध की भी सुनवाई कर सकता है, जिसके लिए अभियुक्त पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के तहत उसी मुकदमे में आरोप लगाया जा सकता है।"

इस परंतुक द्वारा विशेष न्यायालय, जब किसी अनुसूचित अपराध की सुनवाई करता है, यह पाता है कि कोई अन्य अपराध भी किया गया है और दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक मुकदमे में उसी का मुकदमा अनुमत है, तो ऐसे आरोप की सुनवाई कर सकता है। यह कल्पना करना मुश्किल है कि इस तरह का प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 को कैसे आकर्षित कर सकता है।

गुण-दोष के आधार पर श्री डे द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी पूरी तरह से बाहरी व्यक्ति है और वह बिल्कुल भी लोक सेवक नहीं है। बंगाल अधिनियम उन पर लागू नहीं होता है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि बंगाल अधिनियम विशेष न्यायालय को संदर्भित करने के लिए केवल उस अधिनियम की अनुसूची में उल्लिखित अपराधों का प्रावधान करता है और उनके अनुसार अनुसूची में उल्लिखित सभी अपराध वे हैं जो एक लोक सेवक द्वारा किए जा सकते हैं। वह भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के तहत सार्वजनिक सेवक की परिभाषा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं जो परिभाषा अधिनियम की धारा 2 के तहत लागू होती है। वे प्रस्तुत करते हैं कि परिभाषा को ध्यान में रखते हुए लोक सेवक का अर्थ कार्यालय में एक लोक सेवक है न कि वह जो कार्यालय में नहीं रह गया है।

यह सच है कि आई. पी. सी. की धारा 21 लोक सेवकों के विभिन्न वर्गों की गणना करती है जो कार्यालय में हैं या जो होते हैं। हालाँकि, वर्तमान विवाद को निर्धारित करने में यह सही परीक्षा नहीं है। अधिनियम के साथ-साथ बंगाल अधिनियम के प्रावधानों को आकर्षित करने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण तिथि यह है कि क्या अपराध धारा 21 की परिभाषा के भीतर किसी लोक सेवक द्वारा किया गया है। अपराध निर्धारित करने की तारीख अपराध करने की तारीख होती है जब आरोपित व्यक्ति को लोक सेवक होना चाहिए। अधिनियम की धारा 6 में प्रावधान है कि कोई भी अदालत उस धारा में निर्दिष्ट अपराध का संज्ञान नहीं लेगी जो कथित रूप से किसी लोक सेवक द्वारा किया गया है, सिवाय पूर्व मंजूरी के। यह धारा स्वयं किसी अपराध के संज्ञान और किसी अपराध के कथित किए जाने के बीच स्पष्ट अंतर करती है। मंजूरी उस तारीख को संदर्भित करती है जब कोई रिपोर्ट या शिकायत प्रस्तुत करने के बाद अदालत अपराध का संज्ञान लेती है। वह तारीख अनिवार्य रूप से अपराध करने की तारीख के बाद की होती है और कभी-कभी उस तारीख से बहुत दूर होती है। किसी लोक



सेवक की सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र, बर्खास्तगी या निष्कासन से उस अपराध का सफाया नहीं होगा जो उसने सेवा में रहते हुए किया था। अधिनियम की धारा 6 (1) के तहत, जैसा कि धारा 190 (1) सीआरपीसी के मामले में है, अदालत एक अपराध का संज्ञान लेती है न कि एक अपराधी का (देखें रघुबंस दुबे बनाम बिहार राज्य)। इसलिए, इस मामले में संज्ञान लेने के लिए महत्वपूर्ण तिथि वह तारीख है जब विशेष न्यायालय को बंगाल अधिनियम की धारा 4 (2) के तहत राज्य सरकार द्वारा आवंटित किए जाने पर मामला प्राप्त हुआ था।

श्री डे प्रस्तुत करते हैं कि बंगाल अधिनियम की धारा 10 में प्रावधान है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधान बंगाल अधिनियम के तहत मुकदमों पर लागू होंगे। इसलिए, वह प्रस्तुत करता है कि अधिनियम की धारा 6 लागू होनी चाहिए और चूंकि इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वह धारा लागू नहीं होती है और धारा 6 प्रतिवादी के मामले में भी लागू नहीं होती है, क्योंकि वह लोक सेवक नहीं है, विशेष न्यायालय के पास अपराध का मुकदमा चलाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। हमारा स्पष्ट मत है कि बंगाल अधिनियम की धारा 10 तब लागू होगी जब उस धारा के प्रावधान अत्यधिक आकर्षित होंगे। इस न्यायालय द्वारा धारा 6 की व्याख्या ऐसे लोक सेवक पर लागू नहीं होने के लिए की गई है जिसने पद पर रहना बंद कर दिया है। यह बंगाल अधिनियम की धारा 10 की व्याख्या को प्रभावित नहीं करेगा। इस निवेदन में कोई योग्यता नहीं है कि धारा 10 के कारण विशेष न्यायालय को इस मामले में अपराध का मुकदमा चलाने का अधिकार क्षेत्र नहीं कहा जा सकता है।

श्री डे आगे प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि प्रतिवादी लोक सेवक नहीं है, इसलिए वह बंगाल अधिनियम के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों से बाहर है। यह तर्क पूरी तरह से गलत है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत भी, एक बाहरी

व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 5 (3) के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है जब कोई व्यक्ति आदतन भारतीय दंड संहिता की धारा 165ए के तहत दंडनीय अपराध करता है। धारा 165ए में प्रावधान है कि "जो कोई भी धारा 161 या धारा 165 के तहत दंडनीय किसी भी अपराध को बढ़ावा देता है, चाहे वह अपराध उकसाने के परिणामस्वरूप किया गया हो या नहीं, उसे दंडित किया जाएगा।" यह धारा स्पष्ट रूप से एक ऐसे बाहरी व्यक्ति पर लागू होती है जो किसी लोक सेवक को उकसाने का काम कर सकता है। बंगाल अधिनियम की अनुसूची की मद 8 में मद 1,2,3 और 7 में निर्दिष्ट किसी भी अपराध को करने या करने का कोई प्रयास करने या किसी को उकसाने का उल्लेख है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि अनुसूची की मद 8 के तहत एक बाहरी व्यक्ति पर एक लोक सेवक के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है यदि पूर्व भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 के तहत अपराध करने के लिए उकसाता है या साजिश का अपराध करता है जिसका उल्लेख अनुसूची की मद 7 में किया गया है। इसलिए, इस निवेदन में कोई योग्यता नहीं है कि विशेष न्यायालय प्रतिवादी के खिलाफ आई. पी. सी. की धारा 120बी के साथ पठित अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत अपराध का मुकदमा नहीं चला सकता है।

प्रत्यर्थी के वकील की सभी दलीलें विफल हो जाती हैं। डिवीजन बेंच के फैसले और आदेश को दरकिनार कर दिया जाता है। अपील की अनुमति है लेकिन लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

1976 की आपराधिक अपील संख्या 358 में अपीलार्थी पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (1) (ई) के साथ पठित धारा 5 (2) के तहत आरोप लगाया गया था। अपराध के समय वे एक लोक सेवक थे। हालाँकि, 30 अक्टूबर, 1974 को जब उनके खिलाफ आरोप पत्र विशेष न्यायाधीश के समक्ष रखा गया, तो वे लोक सेवक

नहीं रह गए। आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम 1952 (1952 का अधिनियम XI, VI) के प्रावधानों के तहत अपराधों की सुनवाई केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा की जा सकती है। 1973 की सिविल अपील संख्या 1134 के संबंध में ऊपर दिए गए कारणों के लिए, विशेष न्यायाधीश के समक्ष मुकदमे को अवैध नहीं माना जा सकता है। अपील विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है।

पी. बी. आर.

अपील खारिज।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक कैलाश पूनिया द्वारा किया गया है ।

अस्वीकरण - यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी अधिकारिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा एवं निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।